भारतीय जनता पार्टी
BHARATIYA JANATA PARTY
केंद्रीय पुस्तकालय
Central Library
25 सितम्बर 2016 - 25 सितम्बर 2017

प्रकाशित: 27 मार्च 2017 को नेशनलिस्ट ऑनलाइन डॉट कॉम में प्रकाशित

सावरकर के समग्र मूल्यांकन की दरकार

अनंत विजय

रविवार को विनायक दामोदर सावरकर की इक्यावनवीं पुण्यतिथि थी । इस देश में हिंदुत्व शब्द को देश की भौगोलिकता से जोड़नेवाले इस शख्स की विचारधारा पर वस्तुनिष्ठ ढंग से अब तक काम नहीं हुआ है । सावरकर की विचारधारा को एम एस गोलवलकर और के बी हेडगेवार की विचारधार और मंतव्यों से जोड़कर उनकी एक ऐसी छवि गढ़ दी गई है जो दरअसल उनके विचारों से मेल नहीं खाती है । सावरकर ने जिस हिन्दुत्व की विचारधारा को प्रस्तावित और प्रचारित किया था, उसको आजादी के बाद या यों कहें कि महात्मा गांधी की हत्या के बाद उसपर हिकारत की नजरों से विचार किया गया । किसी भी सिद्धांत को जब घृणा की बुनियाद पर या नतीजे को सामने रखकर परखा जाता है, तो उसका दोषपूर्ण होना तय होता है । सावरकर की विचारधारा को महात्मा गांधी की हत्या से जोड़कर जिस तरह से कुप्रचारित किया गया और उसको घृणा की कसौटी पर कसा गया उससे जो नतीजा निकला वह सावरकर के योगदान को सीमित करने के लिए काफी था । फिर वामपंथी विचारधारा के लोगों में एक साथ हल्ला करने की जो संगठित ताकत है, वह किसी को भी झूठ की बुनियाद पर बदनाम कर सकती है। बहुधा वामपंथी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर अफवाह फैलाने की मशीनरी का आरोप लगाते हैं, लेकिन अफवाह और झूठ फैलाने में वामपंथियों जितना संगठित उदाहरण पूरी दुनिया में कहीं अन्यत्र नहीं मिलता है । इसको लेनिन से लेकर माओ और फिडेल कास्त्रों तक को मुक्ति का मसीहा बनाने के उपक्रम को देखकर समझा जा सकता है । माओ और फिडेल ने मुक्ति के नाम पर कितना अत्याचार किया, गरीबों के अधिकारों के नाम पर कैसे लोकतंत्र का गला घोंट दिया और बावजूद इसके वे मसीहा बने रहे तो यह मूल्यांकन की वामपंथी पद्धति ही है । यह पद्धति अपनी विचारधारा के अनुयायियों को आगे तो बढ़ाती ही है; विपरीत या अन्य विचारधारा के मानने वालों को साथ-साथ बदनाम भी करती चलती है । अब अगर हम सावरकर के मामले में ही देखें तो उनके लिखे का मूल्यांकन कम उनपर लिखे का मूल्यांकन ज्यादा हुआ है । जैसे उन्होंने हिंदुत्व में पृष्ठ 81 पर लिखा है कि – **कोई भी व्यक्ति बगैर वेद में विश्वास किए भी सच्चा हिंदू हो सकता है ।** सावरकर के मुताबिक सिर्फ जातीय संबंध या पहचान हिंदुत्व को परिभाषित नहीं कर सकता है । उनके मुताबिक किसी भी राष्ट्र की पहचान के तीन आधार होते हैं – भौगोलिक एकता, जातीय गुण और साझा संस्कृति । यह भी सही है कि सावरकर ने साझा संस्कृति की जो वकालत की है, उसके मुताबिक कोई एक ऐसी भाषा होनी चाहिए जो सबको जोड़ कर रख सके । सावरकर ने इसके लिए संस्कृत या फिर हिंदी को अपनाने की वकालत की । सावरकर के यहां जिस तरह से धार्मिक स्वतंत्रता की बात मिलती है, उसको भी ध्यान में रखकर उनका मूल्यांकन किया जाना चाहिए । जैसे वो अपने लेखन में कहते हैं कि **भारत से ज्यादा उदार धार्मिक व्यवस्था कहां हो सकती है, जहां चार्वाक जैसे विद्वान महाकाल मंदिर की सीढ़ियों से नास्तिकता पर बात करते हैं ।**

दरअसल आजादी के बाद गांधी के साथ के लोगों को उच्च स्थान मिला और गांधी से मतभिन्नता रखनेवाले लोगों को जानबूझकर इतिहास के हाशिए पर रखा गया । इसकी वजहों की गहन पड़ताल की जरूरत है । इतिहास बहुत निर्मम होता है और वक्त जब करवट लेता है तो वो इतिहास को दुरुस्त भी करता चलता है । अब आप देखें तो जिस सावरकर को कट्टर हिदुत्व का पोषक बताकर प्रचारित किया गया, वही सावरकर आजादी के आंदोलन के दौरान भी और उसके बाद भी लगातार यंत्र-युग की वकालत करते रहे । लेकिन उनके इस विचार को उनके मूल्यांकन के वक्त भुला दिया गया, क्योंकि इससे कट्टर हिंदू की छवि गढ़ने में दिक्कत हो सकती थी । सावरकर अपने विचारों में आधुनिक थे और उनको विज्ञान की महत्ता का पता था, लिहाजा वो देश के विकास के लिए विज्ञान को तरजीह देने के मुखर समर्थक थे ।

अब अगर हम देखें तो आजादी के आंदोलन में जनता को संगठित करने के लिए गांधी और सावरकर दोनों ने हिंदू धर्म का सहारा लिया । अगर हम सूक्ष्मता और वस्तुनिष्ठता के साथ विचार करें तो यह पाते हैं कि सावरकर गांधी से ज्यादा उग्रता से हिंदू धर्म की कुरीतियों और कर्मकांडों पर प्रहार करते चलते हैं । अगर हम हिंदू महासभा के उनके अध्यक्षीय उद्बोधन को देखें तो उसमें से यह बात निकलकर आती है । सावरकर की लोकतांत्रिक मूल्यों में जबरदस्त आस्था थी और वो हर किसी को समानता के सिद्धांत की वकालत भी करते थे चाहे उसकी जाति, धर्म कुछ भी हो । सावरकर के इन विचारों का मुठेभड़ उनके ही हिदुत्व को परिभाषित करते हुए पितृभमि और पुण्यभूमि के विचारों से होता है । सावरकर के विचार के इन दोनों छोरों को कभी भी साथ रखकर विचार नहीं किया गया । सावरकर गांधी के अहिंसा के सिद्धांत के भी प्रबल विरोधी थे, लेकिन उन्होंने हिंसा की वकालत की हो ऐसा प्रमाण नहीं मिलता है । दरअसल सावरकर जब सेल्यूलर जेल से बाहर आए तो उनके विचार पूर्व के विचार से बदले हुए थे । इस्लाम के नाम पर सियासत की वो तीव्र आलोचना करने लगे थे । धर्मांतरण के खिलाफ उग्रता से अपने विचारों को रखने लगे थे । दरअसल अगर हम देखें तो सावरकर के विचारों का सही मूलायंकन किया ही नहीं गया । 1923 में प्रकाशित उनकी किताब 'हिंदुत्वा हू इज हिंदू' के आधार पर उनके समर्थकों ने उन्हें अपनाया और विरोधियों ने आलोचना की । हिंदू महासभा के अध्यक्ष रहते उनके विचारों को छोड़कर जब उनका एकांगी मूल्यांकन होता है, तो यह एक तरह से बौद्धिक बेइमानी हो जाती है । उनके निधन के पचास साल बाद क्या अब वक्त नहीं आ गया है कि सावरकर के विचारों को समग्रता में पेश किया जाए और उनकी जो छवि गढ़ी गई है, उसका सही रूप जनता के सामने रखा जाए ।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं स्तंभकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)